रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NSM–16/83

विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

वर्ष १२ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२६ • अधिक फाल्गुन पूर्णिमा [शक] • दि. २७-२-१९८३ • अंक ९

प्रज्ञा–कथा

प्रज्ञा क्या है ? भली प्रकार जानने का नाम ही प्रज्ञा है। ऊपरी–ऊपरी दिखाऊ स्तर की सच्चाई को ही जान लेना प्रज्ञा नही है, प्रत्युत् उस ऊपरी सत्य की गहराइयों में पैठकर भीतरी अंतिम सत्य जान लेना प्रज्ञा है। जैसे कोई अबोध बालक जवाहरातों को रंग–बिरंगे आकर्षक पत्थरों के टुकड़ों के रूप में देखता है, परन्तु एक अनुभवी जौहरी अपनी पैनी दृष्टि द्वारा एक–एक रत्न के भीतर सदोषता–निर्दोषता को देखते हुए उसकी उचित परख करता है, वैसे ही प्रज्ञावान व्यक्ती जो स्थिती सामने आती है, उसका केवल ऊपरी–ऊरी अवलोकन ही नहीं करता, बल्कि अपनी बींधती हुई प्रज्ञा–दृष्टि द्वारा गहराइयों में उतरकर परमार्थ सत्य का साक्षात्कार करता है। यों हर स्थिति को भली प्रकार से समग्र रूप में जान लेना ही प्रज्ञा है।

यह जानना भी तीन प्रकार का होता है। अतः प्रज्ञा भी तीन प्रकार की होती है।

१– श्रुतमयी प्रज्ञा – वह प्रज्ञा जो सुनकर या पढ़कर प्राप्त हुई हो।

२– चिंतनमयी प्रज्ञा – सुन–पढ़कर जो प्रज्ञा प्राप्त हुई, उसे विचार–विनिमय द्वारा, चिंतन–मनन द्वारा, तर्क–वितर्क द्वारा अपनी बुद्धि–तुला पर तोलकर न्याय–संगत और युक्ति–संगत समझते हुए पुष्ट कर लेना ही चिंतनमयी प्रज्ञा है।

उपरोक्त दोनों प्रकार की प्रज्ञाएं सर्वथा निरर्थक है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह सब पराया ज्ञान होने के कारण बहुधा बुद्धि–विलास बनकर ही रह जाता हैं, इसके द्वारा हमें जीवन मे वास्तविक लाभ नहीं मिलता। वास्तविक लाभ मिलता हैं इस तीसरी प्रज्ञा से जो कि :–

३– भावनामयी प्रज्ञा हैं।–याने वह प्रज्ञा जो हमारी अनुभूतियों के बलपर हमारे भीतर ही प्रगटित और प्रस्फुटित हुई हो। यह हमारा अपना साक्षात्कार है और इसलिए सही माने में कल्याणकारी है।

भावनामयी प्रज्ञा के लिए आवश्यक है कि शील धारण कर सम्यक् समाधि उपलब्ध कर लें। सम्यक् समाधि में समाहित हुआ चित्त ही यथाभूत सत्य को जान सकता है, उसके दर्शन कर सकता है। " समाहितो यथाभूतं पजानाति पस्सति ! "

धम्म वाणी

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञञ्च भावयं
आतापी निपको भिक्खु सो इमं, विजटये जटं ॥

विशुद्धि मार्ग–१।१

वह व्यक्ति प्रज्ञावान है, वीर्यवान है, बुद्धिमान है, भिक्षु है जो कि शील पर प्रतिष्ठित होकर सदाचार का पालन करता है, चित्त की एकाग्रता के अभ्यास द्वारा समाधि की और प्रज्ञा की भावना करता है याने उनकी पुष्टि करता है, और इस प्रकार इन बंधन स्वरुप जटाओंको काट लेता है।

इस यथाभूत देखने को ही विपश्यना याने विशेषरूप से देखना कहते है। सामान्यतया हम केवल ऊपरी–ऊपरी दिखाऊ सत्य को ही देखकर रह जाते है, जैसे कि वह अबोध बालक रत्नों की ऊपरी रंगीनी और चमक–दमक को ही देखता है। जौहरी की बींधती हुई पैनी दृष्टि की तरह भीतरी सचाई को देख सकना ही विशेषरूप से देखना है, और यही विपश्यना है, यही भावनामयी प्रज्ञा है। यहां भावना का अर्थ भावुकता या भावावेश नहीं है। भावना का अर्थ है–बढ़ाना, फैलाना, विकसित करना। याने स्वयं अपने अनुभवों द्वारा प्राप्त हुई प्रज्ञा को विपश्यना के अभ्यास द्वारा बढ़ाते रहना।

ऊपरी–ऊपरी सत्य को जान लेना सरल है, परन्तु भीतरी सच्चाई का साक्षात्कार करने के लिए अन्तर्मुखी होना आवश्यक है। अन्तर्मुखी होकर हम अपनी जानकारी प्राप्त करें, आत्म–निरीक्षण करें, आत्म–दर्शन करें, आत्म–साक्षात्कार करें, अपने आप को देखें, जानें समझें।

काया की गति–विधि पर पूरा ध्यान रखते हुए कायानुपश्यना की जाती है। सांस के आवागमन का निरीक्षण भी कायानुपश्यना ही है। सांस का निरीक्षण करते करते शरीर के अंग प्रत्यंग का निरीक्षण करना आरंभ किया जाता है और धीरे धीरे अभ्यास द्वारा शरीर के अंग–अंग में स्थूल व सूक्ष्म संवेदनाओं की अनुभूतियां होने लगती है, जो कि कभी सुखद, कभी दुखद, कभी न सुखद न दुखद होती ही रहती है। द्रष्टाभाव से इन वेदनाओं को निरखते रहकर वेदनानुपश्यना की जाती है। समय समय पर उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार के चित्तों का निरीक्षण करते हुए चित्तानुपश्यना की जाती है। भिन्न–भिन्न प्रकार

की चित्तवृत्तियों याने चित्त में उत्पन्न होने वाले विकारों का निरीक्षण करते हुए धम्मानुपश्यना की जाती है।

इन चारों विपश्यनाओं में हम वेदनानुपश्यना को अधिक महत्व देते है, क्योंकि इसका संबंध थोड़ा बहुत अन्य तीनों से भी रहता ही है। 'वेदना' काया के आधार पर ही अनुभूत की जाती है। वह चित्त द्वारा ही अनुभूत की जाती है। प्रत्येक चित्त-विकार एक सूक्ष्म संवेदना से संबंधित होता है। इस कारण वेदनानुपश्यना का अपना विशिष्ट महत्व है। इस एक की पुष्टि में चारो की पुष्टि होती चली जाती है।

इस प्रकार अन्तर्विपश्यनाओं द्वारा स्वयं अपनी अनुभूतियों से इस सत्य का साक्षात्कार किया जाता है कि यह शरीर अष्टकलापों का, सूक्ष्म परमाणुकणों का पुंज मात्र है और अनित्यता, परिवर्तनशीलता उसका स्वभाव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारो महाभूतों से बने ये परमाणुकण शरीर के भीतर अपने गुण, धर्म, स्वभाव का प्रतिक्षण प्रदर्शन करते ही रहते हैं। बीधंती हुई तीव्र समाधि के बल पर ही इस परिवर्तनशील शरीर-धारा के प्रवाह का निरीक्षण किया जाता है और इसी प्रकार सतत् परिवर्तनशील चित्तधारा का भी। दोनों का अनित्य स्वभाव और दोनों का दुख-स्वभाव स्वयं अनुभूत होता है और तब उनका अनात्म स्वभाव भी स्वयं स्पष्ट होने लगता है। दोनों की निस्सारता स्पष्ट महसूस होती है। तन और मन की इस मिली जुली प्रवाहमान धारा में स्थायी, स्थिर, शास्वत, ध्रुव ऐसा कुछ भी तो नही है, जिसे "मैं" कह सके, जिसे "मेरा" कह सकें, जिस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकें, जिससे अपना तादात्म्य स्थापित कर सकें। इस प्रकार नाम और रुप की जीवनधारा को निरासक्त होकर, निर्लिप्त होकर, निःसंग होकर देख सकने का अभ्यास आरंभ होता है। जैसे-जैसे सूक्ष्म अनुभूतियों की गहराइयों में उतरते जाते हैं, वैसे-वैसे यह निर्लिप्तता भी पुष्ट होती जाती है। जब तक आसक्ति है, तब तक आलंबन का यथाभूत दर्शन नहीं कर सकते। विपश्यना प्रज्ञा द्वारा जैसे-जैसे आसक्ति टूटती है, वैसे-वैसे हम सभी आभ्यांतरिक आलंबनों का यथाभूत यथातथ्य, यथास्वभाव, यथालक्षण दर्शन करने लगते हैं जैसे कोई अंधेरे घर में दीपक लेकर प्रवेश करे तो वहां का अंधकार दूर होता है। प्रकाश उत्पन्न होता है और उस प्रकाश में वहां की सब वस्तुएं साफ साफ दीखने लगती हैं। इसी प्रकार प्रज्ञा के उत्पन्न होने से अविद्या का अंधकार दूर होता है; विद्या का उजाला जाग उठता है और उस ज्ञानालोक में आर्य-सत्यों का प्रगटीकरण होता है, परमार्थ सत्यों का साक्षात्कार होता है।

हम अपने आध्यात्म की गहराइयों में उतरकर दुख सत्य का साक्षात्कार करते हैं। सदा अतृप्त और असंतुष्ट रहने वाला यह मन किस प्रकार तृष्णा की प्यास से निरंतर व्याकुल ही रहता है यह प्यास भी कैसी न बुझने वाली प्यास है? ऐसा बिना पैंदे का गहरा कुंआ जिसे भरने के सारे प्रयास निष्फल होते रहते हैं। अपनी तृष्णाओं अहमन्यताओ और दृष्टियों के प्रति बड़ा हुआ उपादान, चिपकाव, आसक्त-भाव हमें किस प्रकार निरन्तर व्यथित, व्याकुल और व्यग्र बनाता ही रहता है हमारे दुखों और उन सभी दुखों के मूलभूत कारण का साक्षात्कार होने पर उसके निवारण का मार्ग भी स्पष्ट होता है। शील, समाधि और प्रज्ञा का यह पावन मार्ग किस प्रकार दुःख उत्पन्न करनेवाली इन आसक्तियों को नष्ट कर हमें दुख-विमुक्त बनाता है। इसी मार्ग का अभ्यास करते-करते नितांत दुःख-विमुक्ति-स्वरूप निर्वाण का भी साक्षात्कार हो जाता है।

इस प्रकार जैसे जैसे विपश्यना के अभ्यास द्वारा प्रज्ञा पुष्ट होती जाती है, वैसे वैसे मोह मूढ़ता, माया मरीचिका, भ्रम, भ्रांति, धोखा, विपल्लास सभी दूर हटते जाते है। सारी स्थिति अपने आप स्पष्ट होती जाती है। मन में किसी प्रकार की शंकाएं, कुशंकाएं नहीं रहने पाती। प्रज्ञा पुष्ट होती है, तो शील-सदाचार शुद्ध होता है, विकारों से विहीन होकर चित्त विशुद्ध होता है, दृष्टि विशुद्ध होती है और इस कल्याणकारी विशुद्धि मार्ग पर आगे बढ़ते हुए हम शुद्ध आर्यत्व प्राप्त करते हैं। मुक्ति-सुख का आस्वादन करते हैं।

विपश्यना प्रज्ञा का अपना एक सुख है, जो अन्य सभी सुखों से उन्नत है। चाहे हम स्थूल ऐन्द्रिय सुखों में लिप्त हों अथवा अतीन्द्रिय रुप, शब्द आदि के आलंबनों द्वारा आत्म-सम्मोहन-जन्य किसी प्रकार की आनंदानुभूति में लिप्त हों, दोनों ही अवस्था सच्चे सुख की अवस्था नहीं। क्योंकि जब ये सुख समाप्त होते हैं, तो गहरा दुख साथ लाते हैं। और चूंकि दोनों ही अनित्य है, इसलिए परिवर्तनशील है, इसलिए समाप्त होते हैं। समाप्त होते ही मन फिर उन्हें पाने के लिए छटपटाने लगता है, तृष्णा से व्याकुल होने लगता है। वास्तविक सुख तो वह है जो सदा एकरस बना रह सके। वह सुख निर्लिप्ति का ही सुख है। जब हम निर्लिप्त होकर देखने के अभ्यासी हो जाते है, तो हमारा आलंबन भले बदलता रहे, हमारे देखने में कोई अंतर नहीं पड़ता। न तो हम ऐन्द्रिय अथवा अतीन्द्रिय सुखों के आगमन पर नाचने लगते है और न ही उनके निगमन पर रोने लगते है। दोनों ही स्थितियों का एक तमाशबीन की तरह तमाशा देखते है। अपने अन्तर्मन की गहराइयों में उतरकर सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थिति की भी परिवर्तनशीलता का निरीक्षण करते करते इस अनित्यतता की गहन सच्चाई के प्रति सम्यक दृष्टि जागती है, जो कि हमें इस परिवर्तनता से प्रभावित होने से बचाती है। हम एक जैसी निर्लिप्त और निस्पृह दृष्टि से प्रत्येक बदलती हुई स्थिति को देखते है और उसका सुख लेते है। जो कुछ सांदृष्टिक है, आखों के सामने है, उसे निर्विकारभाव से देखते रहने का सुख निराला है, अनोखा है, अतुलनीय है। यही सच्चा सुख विहार है। इसे ही 'दिट्ठ धम्म सुख विहार' कहा गया है।

निरन्तर अतृप्ति और असंतुष्टि-जन्य तृष्णाओं में झुलसते रहने के बजाय आओ हम विपश्यना के अभ्यास द्वारा अपनी भावनामयी प्रज्ञा विकसित करें और तृष्णा की गहन आसक्तियों से विमुक्त होकर स्थितप्रज्ञ व अनासक्त बनें, जीवनमुक्त बनें और अपना सच्चा मंगल साधें कल्याण साधें।

कल्याणमित्र

स. ना. गो.

साधकोंके उद्‌गार

स्पेनसे अना थापर लिखती है, "नव वर्षकी मेरी समस्त मंगल मैत्री आप तथा माताजीको प्राप्त हो और आप दोनो स्वस्थ रहकर अनेक लोगोंमें धर्मका प्रकाश फैला सकें।

मैं विपश्यनाके आठवे वर्षमें प्रवेश कर रही हूँ और सदाके लिए आपकी कृतज्ञ हूँ। जिसे कि बोध गयाकी तूफानी ठंड़के दौरान आपसे प्राप्त किया था।

इस वर्ष यद्यपि मैंने प्रतिदिन दो घंटेका अभ्यास जारी रखा है फिर भी मेरे अनुभव पिछले वर्षकी अपेक्षा कुछ कमजोर हो रहे हैं। कभी कभी साधनामें बैठेही बड़े उतार–चढ़ाव आने शुरू हो जाते हैं। और धीमे अनुभवमें पूरा घंटा बीत जाता है। कभी थोड़ा अच्छा अनुभव भी प्राप्त होता है पर अधिक देर टिक नहीं पाता। हमेशा मेरे पुराने संस्कार (विचार) हावी हो जाते हैं। इसके बावजूद भी ध्यानके बाद बड़ी ताजगी मालूम होती है। शांतता और सद्‌विचारोंसे मन भर जाता है। रात सोनेके पूर्व पूर्ण चेतनता जगाकर ही सोती हूँ। अपनी दैनिक जीवनकी समस्याओंको बखूबी निपटा पाती हूँ। लेकिन मैं स्वीकार करती हूँ कि थोड़ा तनावपूर्ण जीवन जी रही हूँ।

मानसिक स्तर पर मैंने अनित्य और मृत्युको जागरूकताके साथ स्वीकार कर लिया है। इसने मेरे अन्दर एक भय पैदा कर दिया है कि मैं किसी भी क्षण मर जाऊँगी तो मेरे बच्चोंका क्या होगा? जो कि अभी बिल्कुल अबोध हैं। और बेचारा अशोक जो कि पीनेकी कमजोरीके कारण गहरे कींचड़में फंसा है।

मैंने देखा है कि जैसे आपने बताया कि किस प्रकार कर्म–संस्कारोंका खेल अब तक चलता आ रहा है और यह भी समझी कि किस प्रकार अपने भविष्यको बदल सकती हूँ परन्तु वर्तमानको नहीं। और इसीलिए अब मैं वर्तमानको अधिक समतापूर्वक देखनेका प्रयास करती रहती हूँ। इस बातके लिए भी जागरूक रहने लगी हूँ कि किस प्रकार हमारे क्रिया–कलापोंका गहरा संबंध है! इसीलिए तो न किसी अन्यको दोषी समझती हूँ और न ही अपने आपको। सामान्य तौर पर आदमी अपनी अज्ञानतावश एक–दूसरेको चोट पहुँचाता रहता है और नहीं समझता कि इसका प्रभाव घूम–फिरकर फिर उसी पर आनेवाला है। यह विपश्यना ही जिसने कि मुझे अनुभूतिके स्तर पर इस दलदलसे निकलनेका रास्ता बताया। कभी सोचती हूँ कि यह सब छोड़कर किसी विहारमें जाकर बैठ जाऊं (संन्यासिनी बनकर) क्यों कि गृहस्थ जीवनमें तो यह... गर्व, लालच, घृणा, तिरस्कार आदि आने ही वाले हैं। लेकिन यह भी समझती हूँ कि ऐसा नहीं करूंगी। यह जानती हूँ कि अशोक और बच्चे किस प्रकार भावनात्मकरूपसे मुझ पर ही आश्रित हैं! अब मैं उनको काफी समता व मैत्री दे सकती हूँ।

मैंने "गास्पेल ऑफ बूद्धा" बाई–पोल कासुस पढ़ी और बड़ी प्रभावित हुई। खासकर जब बुद्ध अपने पुत्र राहुलसे मिले और उन्होंने कहा "मैं तुम्हें कोई भौतिक संपदा नहीं दे सकता, परंतु वह पवित्र जीवन दे सकता हू जो सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।" इस वाक्य ने मुझे यह सोचने पर विवश कर दिया कि यही तो मुझे अशोक और बच्चोंके लिए करना है। तो भी अशोक किसी शिविरमें आनेके लिए तैयार नहीं हैं। सोनिया केवल ११ वर्ष की हैं जिसकी साधनामें कोई दिलचस्पी नहीं हैं। प्रेम जो कि १३ वर्षका है, इसे सन्मान व आदर देता है। परंतु मैं नहीं समझती कि उसकी उम्र शिविरमें भाग लेने लायक है या नहीं और इससे उब तो नहीं जायेगा अथवा इसे सही मानेमें समझ तो सकेगा। मैं क्या कर सकती हूं?

थोडे समयसे मैंने बुद्ध-मूर्तिके प्रति कोमलताकी गहरी भावना जाग्रत कर ली है। क्या इसे छोड़ दुं?

गत ग्रीष्मकालमें फ्रांसमें मैं आपसे मिलने को बहुत आतुर थी परंतु दुर्भाग्यवंश उसी समय मुझे दिल्ली जानेके लिए यूरोप छोडना पडा। लेकिन यह भी अच्छा ही हुआ कि लीना धींगरा शिविरमें जा सकी। जो कि बहुत दुखी थी और उस शिविरने उसे बहुत सहारा दिया और वह सभी समस्याओंके बाहर निकल सकी। मेरे लिए किसी शिविरमें भाग ले सकना असंभव लग रहा है क्योंकी मुझे मालूम है कि मेरी अनुपस्थितिमें अशोक बच्चोंकी देख-भाल नहीं कर सकेगा। ... गोयन्काजी! मेरी समस्त मैत्री और सद्‌भावनाएं आप तथा माताजी स्वीकार करें और सलाह दें कि कैसे इन परिस्थितियोंको झेल सकू। ...

आवश्यकता है

१) यहाँ विद्यापीठमें इस सत्रका नव–निर्माणकार्य आरंभ हो चुका है। निर्माणकार्य सुचारु एवं व्यवस्थित ढंगसे चलता रहे, इसके लिए किसी सुयोग्य अनुभवी साधककी सुपरवाइजरके रूपमें आवश्यकता है जो कि अपनी सेवाएँ पूरे समयके लिए दिया चाहता हो।

२) इसी प्रकार आय–व्यय एवं चल–अचल संपत्तिका लेखा–जोखा रखने (रजिष्टर मेंटेन करने) के कामका जानकार कोई व्यक्ति अपनी सेवाएँ दिया चाहता हो तो...

[कृपया व्यवस्थापक से संपर्क करें।

संपर्क सूत्र

१) इगतपुरी– व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि,
इगतपुरी–४२२ ४०३. फोन : इगतपुरी ७६.

२) तिनसुकिया– १) श्री रामवल्लभजी साबू
आसाम ट्रंक रोड, तिनसुकिया (आसाम)
पिन– ७८६ १४६.

अथवा २) श्री हरिप्रसादजी मालपाणी
C/o. अनुपम मार्केटिंग प्रा. लि.,
२७/२ D स्ट्रांड रोड, कलकत्ता–७०००० १
फोन : २२८८७७/२२६६९२

३) Shrilanka Contact–Ms. H. R. Premratne
12 Wijerama Mawatha
Colombo Shrilanka

भावी-शिविर

शि. क्र.	स्थान	दिनांक से तक
२२७	इगतपुरी-	१२-३-८३ से २३-३-८३ तक (हिन्दी)
२२८	SHREE LANKA	३०-३-८३ से १०-४-८३ ,, (अंग्रेजी)
२२९	इगतपुरी-	१२-४-८३ से २३-४-८३ ,, (हिन्दी)

भारत में स. आचार्यों के शिविर

क्र.	स्थान	दिनांक से तक	संचालक
NH-९	इगतपुरी	१-४-८३ से १२-४-८३ ,,	श्री. न. पारिख
LN-६	तिनसुकिया	१९-३-८३ से २७-३-८३ ,,	श्री. ल. ना. राठी

संपर्क : (कृपया पृष्ठ ३ पर देखें)

दीर्घ-शिविर – इगतपुरी – १-३-८३ से २३-३-८३ तक (केवल पुराने साधकों के लिए)

सूचना : १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व **शिविर-व्यवस्थापक** के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। **किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।** २) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी-प्रवचन सुनने के लिए हिन्दी-टेप की सुविधा उपलब्ध रहती है। ३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

मे. मॅकडोवेल अँड कं. लि.
इवर्ट हाउस, २२ होमी मोदी स्ट्रीट,
बम्बई-४०००२३
की मंगल कामनाओं सहित
↓

ग्राम : प्रेमकेबल फोन : ४०३५१/४०५४७
मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं लिमिटेड
१४/१५ एफ कॅनौट सर्कल
नई दिल्ली-११०००१
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

बिपदा आयी देखकर, धरम पडै नाहि मन्द।
प्रग्या जाग्रत ही रवै, कटै दुखां का फन्द॥
जागै धातू धरम की, अंग अंग रम जाय।
अणु अणु तो चेतन हुवै, प्रग्या स्थित हो जाय॥
अंतर री आंख्या खुलै, प्रग्या जगै अनंत।
विपस्सना रै तेज सूं, गलज्या दुक्ख तुरंत॥
विपस्सना रै तेज सूं, प्रग्या जग्य जगाय।
राग द्वेस अर मोह नै, जला जला सुख पाय॥
धरम गंग रै घाट पर, दुखियारां री भीर।
प्रग्या जल सू धोयकर, मेटै मन की पीर॥
बावळियो भरमा गयो, पा पोथूयां रो ग्यान।
प्रग्या कोसां दूर है, कोसां ही निरवाण॥

दोहे धर्म के

मुक्त होय हम राग से, मुक्त द्वेष से होय।
मुक्त होय हम मोह से, तो प्रज्ञा-स्थित होय॥
शीलवान होए बिना, शुद्ध समाधि न होय
बिन समाधि प्रज्ञा कहां? मुक्ति कहां से होय?
वह ही जीवन-मुक्त है, जो प्रज्ञा-स्थित होय।
बिन प्रज्ञा आसक्ति है, मुक्ति कहां से होय?
बिन प्रज्ञा उत्तप्त मन राग द्वेष संवेग।
आकुल व्याकुलता भरा उथल पुथल उद्वेग॥
अंतर की प्रज्ञा जगे, दुःख होय सब दूर।
मैत्री करूणा प्यार से, भरे हृदय भरपूर॥
जो उपजे सो भंग हो, विपश्यना से देख।
कैसा मंगल शुद्धि-पथ, रहे न दुख की रेख॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाउस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई-२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. १०००/-, चौथाई पृष्ठ रु. ५००/- ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-, आजीवन शुल्क रु. १००/-

"विपश्यना" 2/83

पो. रजि. नं NSM 16/83

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

To

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)